मुद्दा कन्या शिशु के अस्तित्व का

डॉ. रामप्रताप गुप्ता

हमारा संविधान महिला एवं पुरुष के बीच किसी प्रकार के भेदभाव की अनुमति नहीं देता परंतु लंबे समय से चली आ रही भेदभाव की सामाजिक प्रवृत्ति तो जारी है ही। इसका सबसे स्पष्ट प्रमाण लिंग अनुपात में, और खासकर बच्चों के चिंताजनक लिंग अनुपात में नज़र आता है।

भारत विश्व के उन राष्ट्रों में से एक है जिनमें लिंग अनुपात न केवल कम है, बल्कि समय के साथ-साथ गिरता भी जा रहा है। लिंग अनुपात का मतलब होता है प्रति हज़ार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या। सन 1901 में भारत का लिंग अनुपात 972 था जो गिरते-गिरते सन 1991 में 927 ही रह गया था।

सन 2001 की जनगणना की प्रारंभिक सूचनाओं में उस वर्ष भारत के लिंग अनुपात के बढ़कर 933 होने की सूचना आई तो लगा कि देश की लिंग विरोधी समाज व्यवस्था में परिवर्तन आने लगा है, लिंग भेद में कमी हो रही है। परंतु उसी जनगणना के 0-6 आयु वर्ग के लिंग-अनुपात के आंकड़ों ने सारी आशाएं चकनाचूर कर दीं। इस आयु वर्ग में लिंग अनुपात और भी कम हो गया था। यानी देश में लिंग भेद की व्यवस्था कमज़ोर होने के स्थान पर सुदृढ़ होती जा रही है।

पूरे देश में लिंग अनुपात समान रूप से कम नहीं है। दक्षिण और पूर्वी भारत के राज्यों में लिंग-अनुपात अपेक्षाकृत बेहतर है जबकि उत्तरी और पश्चिमी भारत में यह बहुत कम है। लेकिन पूरे भारत में न्यूनाधिक रूप से इसमें कमी आ रही है।

लिंग-अनुपात में कमी के सामाजिक दुष्परिणामों के बारे में काफी लिखा गया है। पंजाब और हरियाणा राज्यों में, जहां लिंग-अनुपात देश में सबसे कम है, युवकों का विवाह होना कठिन होता जा रहा है। वे बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश से भारी राशि देकर लड़कियां खरीदकर लाने को बाध्य हो गए हैं। खरीदकर लाई गई दुल्हनें परिवार में निम्न स्तरीय स्थान ही प्राप्त कर पाती हैं। गरीब परिवारों के बच्चे तो कभी-कभी कुंआरे ही रह जाते हैं। इस तरह लिंग-अनुपात में गिरावट के अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक दुष्प्रभाव दिख रहे हैं।

लिंग अनुपात के संदर्भ में प्रकृति की अपनी व्यवस्था पर नज़र डाल लेना भी उपयोगी होगा। विश्व भर के आंकड़ों से पता चलता है कि प्रति 100 लड़कियों के पीछे जन्म लेने वाले लड़कों की संख्या 105 के आसपास होती है। मगर प्रकृति लड़कियों को बेहतर रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करती है और वे लड़कों की तुलना में रोगों की शिकार कम होती हैं। रोगों से होने वाली मृत्युओं की संख्या भी लड़कियों में कम और लड़कों में अधिक होती है। अतः 5 वर्ष की उम्र आते-आते समाज में लड़कों और लड़कियों की संख्या समान हो जाती है। इसके बाद 60 वर्ष की उम्र के पश्चात महिलाओं के जीवित रहने की

संभावना पुरुषों की तुलना में अधिक होने के फलस्वरूप देश की कुल आबादी में प्रति हज़ार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 1015 हो जाती है।

जिन राष्ट्रों में लिंग अनुपात इससे कम होता है, उस राष्ट्र की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक व्यवस्था को महिलाओं के प्रति भेदभाव-मूलक माना जाता है। भारत में तो लिंग अनुपात 1015 के स्थान पर 933 ही है, अतः स्पष्ट है हमारी व्यवस्था में महिलाओं को बराबरी का स्थान नहीं मिल पाता है। समय के साथ यह प्रवृत्ति बढ़ रही है। शिक्षा का प्रसार भी इसे कम करने में असमर्थ रहा है।

हमारा संविधान तो महिला एवं पुरुष के बीच किसी प्रकार के भेदभाव की अनुमति नहीं देता है परंतु लंबे समय से चली आ रही भेदभाव की सामाजिक प्रवृत्ति तो जारी है ही।

तृतीय भारतीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के आंकड़े बताते हैं कि जन्म के प्रथम माह में लड़कों की मृत्यु दर 40.9 और लड़कियों की मृत्यु दर 38.8 प्रति हज़ार है जो कि प्राकृतिक व्यवस्था के अनुरूप ही है। लड़कियों की रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक होने से उनकी मृत्यु दर लड़कों की तुलना में कम है।

प्रथम माह से एक वर्ष के बीच लड़कियों की मृत्यु दर 24 एवं लड़कों की मृत्यु दर 17.6 प्रति हज़ार है। अर्थात लड़कियों की रोग प्रतिरोधक शक्ति अधिक होने के बावजूद परिवार में पोषण, स्वास्थ्य आदि के मामले में भेदभाव होने के कारण उनकी मृत्यु दर लड़कों की तुलना में अधिक हो जाती है। लगता है कि लड़कियों को प्रकृति-प्रदत्त शक्तियां भेदभाव की सामाजिक व्यवस्था के सामने परास्त हो जाती हैं।

बालिकाओं के साथ बढ़ते भेदभाव के प्रतिकूल सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभावों की पृष्ठभूमि में केंद्र व राज्य सरकारों ने बालिकाओं के प्रति भेदभाव की समाप्ति के उद्देश्य से अनेक कदम उठाए हैं।

लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से उनकी फीस तो समाप्त कर ही दी गई है उन्हें पाठ्य पुस्तकें भी मुफ्त दी जाने लगी हैं। उनके लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था भी की गई है। उद्देश्य यह है कि लड़कियां पढ़ें-लिखें, परिवार में बेहतर स्थान प्राप्त करें जिससे उनके प्रति भेदभाव की स्थिति समाप्त हो सके।

माता-पिता पर लड़कियों का विवाह भार स्वरूप न रहे, इस उद्देश्य से गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों की लड़कियों का दायित्व अनेक राज्य सरकारों ने अपने ऊपर ले लिया है। वे उनके विवाह का आयोजन भी कर रही हैं। कुछ चुने हुए ज़िलों में सरकार एवं जीवन बीमा निगम मिलकर ऐसे माता-पिताओं को 1 लाख रुपए देने की व्यवस्था कर रहे हैं, जो अपनी लड़कियों का विवाह 18 वर्ष की हो जाने के बाद ही करेंगे। अन्य राज्यों में लड़कियों के जन्म के साथ ही कुछ राशि जमा करने की व्यवस्था की गई है जो 18 वर्ष की हो जाने के पश्चात उन्हें मिल सकेगी। जिससे माता-पिता कन्या को भार स्वरूप नहीं देखेंगे।

इन सारी योजनाओं के पीछे सरकारों की मान्यता यह रही है कि केवल गरीब परिवारों के लोग ही अपनी गरीबी के चलते कन्याओं के साथ भेदभाव करते हैं। लेकिन वास्तविकता इससे भिन्न है।

पंजाब और हरियाणा जैसे संपन्न राज्यों में तो लिंग-अनुपात कम है ही, इन राज्यों के संपन्न वर्गों में यह और भी कम है। जैन समाज सबसे संपन्न समाज है, और इसमें भी लिंग-अनुपात अन्य समाजों की तुलना में काफी कम है। पंजाब में कन्या भ्रूण हत्या के प्रयासों पर सरकार का प्रतिबंध लगने के साथ ही गरीब परिवार कन्या को गुरुद्वारों में छोड़कर जाने लगे हैं। शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबंधक समिति ने ऐसी कन्याओं के पालन-पोषण की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है।

जहां गरीब परिवारों द्वारा कन्या भ्रूण हत्या पर कुछ रोक लग सकी है, वहीं संपन्न परिवारों में यह प्रक्रिया निरंतर बढ़ती जा रही है। मध्यप्रदेश के बहुत कम लिंग-अनुपात वाले ज़िले मुरैना में निजी चिकित्सकों ने हर मोहल्ले में कन्या भ्रूण हत्या हेतु अल्ट्रासाउण्ड मशीनें लगा ली हैं। जान बचाने का दायित्व निर्वाह करने वाले

चिकित्सकों का भारी मुनाफे वाले इस धंधे में तेज़ी से आना लाभ और लोभ की अधिकाधिक शक्तिशाली होती संस्कृति का परिचायक है।

सरकार ने सन 2003 में गर्भस्थ शिशु के लिंग की जांच की तकनीक (लिंग के चुनाव पर प्रतिबंध) कानून तो पास किया है, परंतु अब तक का अनुभव बताता है कि यह कानून चिकित्सकों द्वारा अल्ट्रासाउण्ड मशीनों को भ्रूण हत्या के उद्देश्य से लिंग की जांच हेतु प्रयुक्त करने से रोकने में असफल रहा है। भारत जैसे पितृ प्रधान समाज में इस कानून के उल्लंघन के अनेक तरीके विकसित कर लिए गए हैं और प्रशासन इस दुरुपयोग को रोक नहीं पा रहा है।

देश में लिंग जांच और कन्या भ्रूण हत्या एक बड़ा व्यवसाय बनकर उभरा है। विश्व की अल्ट्रासाउण्ड मशीनें बनाने वाली हर कंपनी भारत में सक्रिय है और अनुमान है कि भारत में प्रति वर्ष 300 करोड़ की ऐसी मशीनें बिकती हैं। कहा जाता है कि प्रति वर्ष 1 लाख कन्याओं को जन्म के पूर्व ही मौत के घाट उतार दिया जाता है। चिकित्सा जगत को यह समझना ही होगा कि कन्या भ्रूण हत्या को सरकार गंभीरता से ले रही है और उस पर रोक लगाने को कटिबद्ध है। चिकित्सकों को इस अवैध व्यवसाय अपनाने पर कठोर से कठोर दंड मिले ही, ऐसी व्यवस्था सुनिश्चित करना होगी।

सरकार एवं इस क्षेत्र में कार्यरत स्वैच्छिक संगठनों को मिलकर प्रयास करने होंगे ताकि लोग महसूस करने लगें कि इस विश्व में लड़के एवं लड़की का जन्म इसकी निरंतरता के लिए समान रूप से आवश्यक है। हमें उन अफ्रीकी राष्ट्रों से कुछ सीखना चाहिए, जिन्होंने भीषण अकाल और भुखमरी का सामना करते हुए भी महिला एवं पुरुष के बीच किसी भेदभाव को स्वीकार नहीं किया है और अपना लिंग-अनुपात संतुलित बनाए रखा है। ***(स्रोत फीचर्स)***